के
मोती
पुष्कर लाल केडिया

गहरे सागर के मोती

*

पुष्करलाल केडिया

*

Manishika's Title No. 9
GAHARE SAGAR KE MOTI
by Sri Pushkar Lal Kedia

गहरे सागर के मोती

श्री पुष्करलाल केडिया के लेखों का संकलन

प्रकाशक :

मनीषिका

२१६, गोपाल भवन, ४३, कैलाश बोस स्ट्रीट

कलकत्ता-७०० ००६

मुद्रक :

राज प्रोसेस प्रिन्टर्स

८, व्रजदुलाल स्ट्रीट, कलकत्ता-७०० ००६

द्वितीय संस्करण गणतन्त्र दिवस १९८९

आवरण : शम्भू प्रसाद श्रीवास्तव

अपनी बात

□ □ □

पूर्व पुरुषों ने सत्य ही कहा है, "जिन खोजा तिन पाइयां, गहरे पानी पैठ।" चिन्तन के गहन समुद्र में डूबकर जिज्ञासाओं का समाधान ढूँढ़ने वाला कभी खाली हाथ नहीं लौटता, यह मेरा अनुभव भी है। मेरी छोटी-सी मुट्ठी में जितना कुछ आ सका है, वह आपके सामने प्रस्तुत है—'गहरे सागर के मोती' के रूप में। इससे पहले प्रकाशित 'मेरी दृष्टि मेरा चिन्तन' में संकलित मेरे लेखों को प्रबुद्ध पाठकों ने जिस रुचि के साथ पढ़ा और सराहा है, उसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ। इस पुस्तक में भी यदि उन्हें मनोनुकूल सामग्री मिली तो मैं अपना लेखन सार्थक मानूँगा।

वर्तमान युग समस्याओं का युग है। मनुष्य के बाहर ही नहीं, भीतर भी उथल-पुथल मची है। हम जो कुछ झेल रहे हैं, उसके विषय में चिन्तन करने का न तो हमारे पास अवकाश है, न उत्साह है। चिन्तन उलझनों को सुलझाने का सबसे सशक्त और वैज्ञानिक माध्यम है। मैंने धर्म, समाज, नैतिकता, बालकों के चारित्रिक विकास तथा पुरानी परम्पराओं के विषय में गहराई से चिन्तन करके, जो निष्कर्ष निकाले हैं, वे आपके सामने हैं। यदि इनमें आपको कोई काम की बात मिलती है तो मेरा चिन्तन सार्थक होगा। एक और बात जो मैंने विगत वर्षों में बड़ी तीव्रता से अनुभव की है, वह यह है कि गूढ़ और बोझिल लगने वाले विषयों को यदि रोचक और सबकी समझ में

आने वाली भाषा में प्रस्तुत किया जाय तो उससे साधारण व्यक्ति भी प्रभावित हो सकता है। धर्म, नीति तथा संस्कृति की महान शिक्षाओं और संदेशों को जन-साधारण तक पहुँचाने के लिए जिस प्रकार के साहित्य की आवश्यकता मेरी दृष्टि में है, उसी की रचना में प्राणप्रण से तल्लीन हूँ। आपका प्रोत्साहन, सुझाव एवं सहयोग ही मेरी प्रेरणा का मूल स्रोत है।

आज हमारे सामने सबसे ज्वलन्त प्रश्न है नई पीढ़ी के मार्गदर्शन का। समय के परिवर्तन को ध्यान में रखकर हमें नई पीढ़ी को नैतिक मूल्यों, समाज, देश, परिवार के प्रति कर्तव्यों तथा जीवन के वास्तविक ध्येय का ज्ञान कराने के लिए उपदेशक नहीं, बल्कि बुद्धिमान मित्र बनकर सत्य का ज्ञान कराना होगा। यह विचार मेरे लेखन का प्राणतत्व है।

"गहरे सागर के मोती" के प्रत्येक लेख में मैंने अपनी बात अपने ढंग से कही है। मुझे विश्वास है कि प्रत्येक उम्र के पाठक मेरी बातों में रस लेंगे और मेरे विचारों को हृदयंगम करने में उन्हें कोई कठिनाई नहीं होगी।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में आपका अमूल्य अभिमत पाकर मुझे हार्दिक प्रसन्नता होगी। आशा है आपके सारगर्भित विचारों को जान-कर मेरा वैचारिक धरातल और अधिक सुदृढ़ एवं उर्वर हो सकेगा।

गणतन्त्र दिवस

२६ जनवरी, १९८९ पुष्करलाल केडिया

लेख-क्रम

□ □ □

यह कृति समर्पित है—

उन बन्धुओं को—

जो नवीन दृष्टि—नवीन चिन्तन के दर्पण
में किसी सत्य का दर्शन करके प्रसन्नता अनुभव करते हैं।

उन तरूणों को—

जिन्हें जीवन में कर्मयोगी बनने के लिये
किसी सुदृढ़ वैचारिक धरातल की तलाश है।

हमारा विराट् स्वरूप : अपनी असीम शक्ति को पहचानें

□ □ □

मानव-शरीर की आधारभूत इकाई है, जीव कोष (बायोलोजिकल सेल)। शरीर में प्राय: ६ नील के लगभग कोशिकाएँ हैं। प्रत्येक जीवकोष हजारों पावर स्टेशन, परिवहन संस्थान एवं संचार संस्थान की मिलीजुली व्यवस्था के रूप में सुसंचालित बड़ा शहर है। यहाँ कच्चा माल आयातित होता है, नया माल तैयार किया जाता है तथा अवशिष्ट मात्र पदार्थों को निकाल फेंकने की क्रियाएं भी सम्पादित होती हैं। एक समर्थ अनुशासनपूर्ण प्रशासन की झाँकी इस इकाई में प्रतिपल के जीवन-व्यापार में देखने को मिलती है।

मानव-शरीर एक प्राकृतिक कारखाना है। इसके भीतर और बाहर अनेक छोटे-बड़े दृश्य-अदृश्य यंत्र अद्वितीय हैं, अनमोल हैं और प्रकृति की अद्भुत कारीगरी के नमूने हैं। हमारा मस्तिष्क एक अद्भुत रहस्यलोक है। ३ पौंड वजनी और २६ वर्ग इंच वाली पिटारी में बन्द यह मस्तिष्क भूत, वर्तमान एवं भविष्य का समस्त ज्ञान अपने भीतर समेटे हुए, शरीर के शीर्ष भाग पर अवस्थित है। इसमें चौदह करोड़ कोशिका तंत्र और चौदह अरब पाँच लाख तंतु होते हैं, जो "ग्रे मैटर" एवं "ह्वाइट मैटर" नामक पीले और

सफेद द्रव में तैरते रहते हैं। मस्तिष्क १०० अरब सूचनाएं संचित करने में सक्षम है। समूचे शरीर की संचार प्रणाली १३ अरब 'न्यूरान्स' पर आधारित है। उनमें से १० अरब अकेले मस्तिष्क में है।

मनुष्य के चारो ओर रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और ध्वनियों का महासागर सदैव लहराया करता है। उसमें उठने वाले तूफान मस्तिष्क से टकराते रहते हैं। मस्तिष्क इन सबको जानता-पहचानता है।

मानव-हृदय एक विलक्षण प्राकृतिक पम्पिग यंत्र है। मानव-हृदय एक मिनट में ७२ बार एवं एक दिन में १०३६८० बार पम्प करता है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि १५० ग्राम वजनी मुट्ठी भर का हृदय एक घंटे में ३४१ लीटर एवं एक दिन में ८००० लीटर रक्त शुद्ध करके पम्प करता है।

श्वसन-क्रिया का यंत्र फेफड़ा भी कम विलक्षण नहीं है। फेफड़ों के वायु कोष्ठकों की संख्या ३० अरब बतलाई गई है। एक मिनट में करीब २० बार एवं पूरे दिन में २३६०० बार यह सांस खींचता-निकालता है। यह ८००० मिलीलीटर (१५ पिन्ट) वायु प्रति मिनट व्यवहार करता है।

हमारी तंत्रिका (स्नायु) प्रणाली भी आश्चर्यचकित कर देने वाली है। तंत्रिका-प्रणाली मानव-शरीर की अत्यधिक विकसित एवं महत्वपूर्ण संचार-प्रणाली है। यह बाहरी जगत् से प्राप्त सन्देश को शारीरिक अवयवों, ऊतकों (टिस्यू) और कोशिकाओं (सेल्स) को प्रेषित करती है। स्नायुओं को रासायनिक ट्रांसमीटरों की

सहायता से संवादों को भेजने और प्राप्त करने में १/१०००० सेकेण्ड का समय लगता है। स्नायु-आवेग १०० मीटर प्रति सेकेण्ड तक की गति से मस्तिष्क के स्नायुओं में पहुँच जाता है।

एक आश्चर्यजनक अवयव

शरीर के अनेक आश्चर्यजनक यंत्रों में एक यंत्र और है—जो प्राकृतिक शोधक संयंत्र के रूप में रक्त को शुद्ध करने का महत्वपूर्ण कार्य करता है। इस यंत्र का वजन १५० ग्राम होता है और उसकी आकृति सेम के वीज जैसी होती है। प्रत्येक गुर्दा ४ इंच लम्वा, अढ़ाई इंच चौड़ा और २ इंच मोटा होता है। दोनों गुर्दों में रक्त-शोधन का कार्य सम्पन्न करने के लिए दस लाख अति सूक्ष्म नलिकाएं हैं, जिन्हें नेफ्रान्स कहते हैं। ये रक्त-रचना को संतुलित रखने और दूषित एवं सारहीन द्रव को वाहर निकालने के लिए उसे मूत्र का रूप देने का कार्य भी करते हैं।

हमारे धर्मशास्त्रों में कई आख्यान आते हैं, जिनमें विराट् स्वरूप दिखाये जाने का उल्लेख है। भगवान श्रीकृष्ण ने वचपन में मिट्टी खाई थी। माता यशोदा के कहने पर जब उन्होंने अपना मुख खोलकर दिखाया तो यशोदा ने उसमें सारे ब्रह्माण्ड के दर्शन किये। महाभारत के युद्ध में भी श्रीकृष्ण ने अर्जुन को अपना विराट् स्वरूप दिखाकर, अर्जुन को अर्जुन के ही विराट् स्वरूप का वोध कराया। समुद्र-तट पर सीता की खोज में निकले हनुमान को जामवन्त ने उनकी शक्ति का वोध कराया। हम भी अपने ज्ञान की दिव्य दृष्टि से अपनी शक्ति को देखें-परखें तो हमें सृष्टिकर्ता द्वारा प्रदत्त इस विराट् स्वरूप का ज्ञान हो सकेगा।

हमारी ठिगनी काया के ढाँचे को दीर्घ काल तक खड़ा रखने के लिए २०६ अस्थियाँ शरीर के अवयवों को सक्रियता, सहयोग और सुरक्षा प्रदान करती हैं। अस्थियों के केन्द्र में विद्यमान मज्जा, रक्त कोशिकाओं का निर्माण जिस गति से करती है, वह उल्लेखनीय एवं आश्चर्यजनक है। आधा पौण्ड लाल मज्जा प्रतिदिन लगभग पचास खरब रक्त कोशिकाएं उत्पन्न करती है।

ब्रह्माण्ड : हमारा शरीर

ब्रह्माण्ड में दिखने वाले असंख्य नक्षत्रों की तरह हमारी इस काया में भी असंख्य अतिसूक्ष्म कोशिकाएं हैं। यह चौंका देने वाला तथ्य है कि रक्त की एक बूंद में पच्चीस करोड़ लाल कोशिकाएं एवं चार लाख सफेद कोशिकाएँ समा सकती हैं।

प्रत्येक अंग की रचना और क्रिया अद्‌भुत और अतुलनीय है। मानव-शरीर ब्रह्माण्ड का सबसे विलक्षण और शक्तिशाली पावर हाउस है। इस युग के महान वैज्ञानिक मनीषी आइन्स्टाइन ने बताया कि पदार्थ के एक परमाणु से तीन लाख पच्चीस हजार कैलोरी ऊर्जा उत्पन्न होती है। फिर मानव-शरीर तो विश्व ब्रह्माण्ड में पाये जाने वाले समस्त स्थूल, सूक्ष्म और अदृश्य कणों के मिश्रण से निर्मित हुआ है। औसत ६० किलोग्राम की स्थूल काया में कितना विशाल शक्ति-भण्डार छिपा हुआ है, इसका अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

आइये, हम सब अपनी दिव्य दृष्टि से अपना ही विराट् स्वरूप देखकर अपनी असीम शक्ति को पहचानें और ईश्वर प्रदत्त इस काया का सत्कर्मों में उपयोग करके सच्चे मानव-धर्म का पालन करें।

अमरता का अचूक नुस्खा

□ □ □

विश्वविजेता सिकन्दर अनेक देशों की विजय के वाद उस दिन सुवह अपने बिस्तर से उठते ही अचानक काँप उठा, जव उसे आभास हुआ अपनी मृत्यु का। मृत्यु की कल्पना मन में उठते ही उसका सारा शरीर पसीने से तर-वतर हो गया। विल्ली को देखकर जिस तरह कबूतर अपनी आँखें बंद कर मौत के मुँह में जाने को तैयार हो जाता है, वही हालत थी सिकन्दर महान की।

उसके मानस-पटल पर भयंकर युद्ध के दृश्य घूमने लगे। अनगिनत लोगों को मौत के घाट उतारने वाला सिकन्दर अपनी मौत की कल्पना मात्र से ही सिहर उठा। उसे एक-एक पल युग के समान लगने लगा। धीरे-धीरे उसने अपने आप को नियंत्रित किया, पर उसके मन में एक ही बात रह-रह कर घूम रही थी और वह थी मृत्यु।

सिकन्दर ने अपने सलाहकारों को बुला भेजा। उसने उनके सामने अपना विचार रखा एवं इच्छा प्रकट की—"मैं अमर होना चाहता हूँ।" सलाहकारों ने इतिहासकारों, चिकित्सकों, विशेषज्ञों आदि की सभा बुलाने की सलाह दी। योजना के अनुसार अनेक विद्वानों को बुलाया गया। सभी ने एकमत होकर कहा—"महाराज,

जिसने जन्म लिया है ; उसकी मृत्यु निश्चित है। कोई भी प्राणी आज तक अमर नहीं हो सका है और न होगा।"

सिकन्दर उदास हो गया। सारा जीवन चैन से न बैठने वाले सिकन्दर में आज जैसे अपने पैरों पर खड़े रहने की ताकत भी न थी। उसे अपने आप पर क्रोध आ रहा था। जीवन में की गई भाग-दौड़ उसे निरर्थक नजर आ रही थी।

कुछ दिनों के बाद एक सुबह टहलते समय उसे एक भारतीय सन्यासी के दर्शन हुए। सन्यासी ने सिकन्दर महान से उसकी व्यथा जाननी चाही। सिकन्दर ने बताया कि वह अमर होना चाहता है। सन्यासी उसकी बात सुनकर खिलखिलाकर हँस पड़ा। उसने कहा—"यह तो मनुष्य के अपने वश की बात है।"

सिकन्दर ने गर्व से कहा—"ऐसा कोई काम नहीं है जो मैं न कर सकूँ।" उसने संन्यासी से पूरी बात समझाने के लिये कहा। सन्यासी ने अपनी झोली से भस्म की एक पुड़िया निकाल कर उसके हाथ में थमा दी और उसे सोने के समय दूध के साथ खाने की सलाह दी। उसने उसे दूसरे दिन सुबह मिलने के लिए कहा। इतना कह कर सन्यासी अदृश्य हो गया। सिकन्दर और अधिक बातें न कर सका।

उसका पूरा दिन बड़ी व्यग्रता से बीता। रात को सन्यासी के निर्देश के अनुसार उसने पुड़िया की भस्म दूध में मिला ली और दूध पी गया। थोड़ी ही देर में उसका सिर चकराने लगा। अचानक उसे वही सन्यासी सामने दिखाई दिया। सन्यासी ने उसे अमरताल की

जानकारी दी और कहा कि वहाँ जाकर उसका पानी पीकर वह अमरत्व प्राप्त कर सकता है। सिकन्दर को 'सन्यासी की बात पर पूरा विश्वास था। अब धैर्यपूर्वक वह अमरताल जाने की योजना पर विचार करने लगा। मनुष्य बड़ा स्वार्थी है। उसने सोचा कि यदि और किसी को साथ ले जाएगा तो दूसरा व्यक्ति भी अमर हो जाएगा। यह अवसर पाकर वह स्वयं के अलावा और किसी को नहीं ले जाना चाहता था। उसने घोड़े पर बैठ कर जाना भी उचित नहीं समझा, क्योंकि ऐसा करने पर घोड़ा भी अमर हो सकता था। अकेले ही सिकन्दर चल पड़ा। घने जंगलों और पहाड़ों को पार कर वह आखिर एक मनोहर ताल के पास पहुँचा। वहाँ का रमणीक दृश्य देखकर सन्यासी के बताये विवरण के अनुसार उसने जान लिया कि यही उसका निर्दिष्ट स्थान 'अमर ताल' है।

सिकन्दर ने 'अमर ताल' का पानी पीने के लिए ज्यों ही अपने दोनों हाथ पानी में डुबोये, अचानक भयंकर आवाज आई। उस आवाज ने उसे पानी न पीने का संकेत दिया। सिकन्दर के हाथ रुक गए। वह चारो तरफ देखने लगा। उसने कई अति वृद्ध व्यक्तियों को कराहते हुए और अनेक मगरमच्छों को पानी से दूर धीरे-धीरे खिसकते हुए देखा। वे जीवित भयानक मगरमच्छ थे। उनमें कुछ करने लायक कोई शक्ति नहीं रह गई थी। अनेक प्रकार के पशु-पक्षी भी इसी दयनीय हालत में नजर आ रहे थे। उनमें से एक ने कहा—"सिकन्दर इस अमरताल का पानी पीकर तू भी अमर हो हो सकता है। हमने भी इसका पानी पीया है। हम भी अमर हो गए हैं। लेकिन हमारी शारीरिक शक्ति पूरी तरह क्षीण हो गई

है। हम अब मर भी नहीं सकते। क्या तू इस अवस्था में रह कर अमर रहना चाहता है?" सिकन्दर वहाँ की हालत देख-समझकर हतप्रभ हो गया। वह क्षण भर भूल कर भी वहाँ नहीं रहना चाहता था। वह उल्टे पाँव दौड़ पड़ा।

राजमहल के बाहर वही सन्यासी उसे फिर सामने दिखाई दिया। सिकन्दर ने कहा—"महात्मा मैं शारीरिक क्षीण अवस्था भोग कर अमर नहीं होना चाहता। मैं जवान रह कर अमर होना चाहता हूँ।" सन्यासी ने एक अन्य स्थान पर जाने का रास्ता बताया। वहाँ जाकर "अमर फल" खाने की सलाह दी।

सिकन्दर एक पल भी देर नहीं करना चाहता था। वह बताये गये स्थान पर तेजी से चल पड़ा। पहले की तरह ही भयंकर रास्तों को पार करता हुआ एक ऐसे स्थान पर पहुँचा जहाँ उसे दिव्य फल लगे दिखाई दिए। तभी उसका ध्यान उस कोलाहल की तरफ गया जो पीछे से सुनाई पड़ रहा था। उसने देखा अनेक जवान व्यक्ति आपस में लड़ रहे थे। मार-काट मची हुई थी। वे मरते थे और जिन्दा होकर पुनः लड़ने लगते थे। उसकी समझ में कुछ न आया। कुछ देर बाद शान्ति होने पर एक जवान ने उसे बताया कि सभी यहाँ का 'अमर फल' खाये हुए हैं। उनकी सारी इच्छाएँ पूरी हो चुकी हैं और उनकी अब जीने की कोई इच्छा नहीं रह गई है। पर वे मर भी नहीं सकते, क्योंकि 'अमर फल' उन्होंने खाया है। वहाँ का सारा नजारा देखकर सिकन्दर का दिमाग बुरी तरह चक्कर खाने लगा। उसका सारा शरीर काँप उठा। वह अचानक अपने

बिस्तर से उठ बैठा। वह उस भारतीय सन्यासी से मिलने के लिए बेचैन था, जिसने सोने के पहलें उसे भस्म खाने की सलाह दी थी।

सिकन्दर उठकर चल पड़ा। भारतीय सन्यासी उसे एक पेड़ के नीचे बैठा दिखाई पड़ा। सिकन्दर ने उसे प्रणाम कर, रात की घटना की जानकारी कराई। संन्यासी सारी बातें सुनकर मुस्कुरा उठा। उसने सिकन्दर को शान्त होकर बैठने को कहा। सन्यासी ने कहा "महान सिकन्दर, अमर होना मनुष्य के वश की बात है, पर मनुष्य अपने धन-दौलत, शान-शौकत, ऐश्वर्य और अपनी शक्ति की चकाचौंध में सब कुछ भूल जाता है। उसका एक ही ध्येय रहता है, अधिक से अधिक शक्ति का संचय। पैसे वाले और अधिक धन की लिप्सा में सारा जीवन लगा देते हैं। देवताओं का अक्षय यौवन और एकरस जीवन उन्हें उबा देता है और वे मनुष्य की योनि में जन्म लेना चाहते हैं। अक्षय यौवन की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को सोचना चाहिये कि जब उसके प्रियजनों की मृत्यु होगी तो क्या वह उस सन्ताप को झेल सकेगा? ऐश्वर्य, शक्ति-सम्पन्नता इसी धरती पर रह जाएगी, यदि कोई चीज बचेगी तो वह है उसके द्वारा किए गए सत्कार्य। अमर वही है जिसने जीवन में अच्छे कर्म किये हैं। जब तक यह पृथ्वी, आकाश रहेंगे, ऐसे सत्पुरुषों के किये गये कार्य उन्हें अमर रखेंगे। उनके न रहने पर भी लोग उन्हें श्रद्धा से याद करेंगे। तुम भी अब जीवन में दूसरों के लिए अच्छे कार्य करो। यही अमरता है, यही अजरता है।"

सिकन्दर महान् भारतीय संन्यासी के चरणों पर गिर पड़ा। उसे अजर-अमर होने का असली नुस्खा मिल गया था।

मिलावट हो रही है हमारे खून में

□ □ □

हमारे शरीर का सबसे बड़ा आधार है इसमें बहता खून। हम जो भी खाते हैं, उसका खून बनता है और वही खून विभिन्न तत्त्वों के रूप में हमारे शरीर में विभिन्न काम करता है।

कहावत है "जैसा अन्न-वैसा मन"। जो अन्न हम खाते हैं, उसका प्रभाव हमारे तन और मन, दोनों पर पड़ता है। सात्विक, तामसिक, किसी भी प्रकार का अन्न हम खायें, उसी के अनुरूप हमारी क्रियाएँ और प्रवृत्तियाँ होंगी। हमारा मन कल्पवृक्ष है। जिस कल्पना से हम कमाते हैं, वही कल्पना हमारी रुचि और खाद्य पदार्थों के चयन में भी सम्मिलित होती है और हमारा भोजन हमारे खून और मन को प्रभावित करता है।

आज चारों तरफ मनुष्य अशान्त नजर आ रहा है। वह बेतहाशा दौड़ रहा है, पर मंजिल तक नहीं पहुँच पा रहा है, क्योंकि उसकी कोई निश्चित मंजिल ही नहीं है।

ऐसा महसूस होता है कि बहुतों ने धन-सम्पत्ति की प्राप्ति को ही अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है। ऐसे इने-गिने लोग मिलेंगे, जो इसके लिए पागल नहीं हैं। पर ऐसे भी मौके आते हैं, जब ऐसे लोगों को उनका मन कभी-कभी धन-सम्पत्ति की ओर अपना ध्यान लगाकर सोचने को विवश कर देता है।

एक राजा ने अपनी प्रजा पर अनेक कर लगा दिये। हिसाब लगाकर देखा गया कि जब कर कम थे, तब भी सरकारी खजाने में उतना ही धन आता था, जितना अधिक कर लगाने पर आ रहा है। शासक के लिए यह चिन्ता की बात थी। उसने अपने राज्य के प्रमुख अधिकारियों की सभा बुलाई और उनके सामने अपने विचार रखे। सच्चाई जानते हुए भी राजा के भय से किसी को कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ। एक सीधा-सा अधेड़ अधिकारी नम्रता के साथ उठा और उसने उस विषय पर रोशनी डालने के लिए बर्फ का टुकड़ा मँगवाने की बात रखी। बर्फ का एक बड़ा टुकड़ा मँगवाया गया। अधिकारी ने निवेदन किया कि उपस्थित सभी व्यक्ति अपने-अपने हाथ में बर्फ का टुकड़ा लेकर एक दूसरे के माध्यम से महाराज तक यह टुकड़ा पहुँचा दें। विभिन्न हाथों से होता हुआ बर्फ का टुकड़ा जब राजा के पास पहुँचा, तब तक अत्यन्त छोटा हो गया था। अधिकारी ने कहा—"महाराज आपने सरकारी खजाने में आने के लिए जो कर लगा रखा है उसका भी यही हाल है। जितने हाथों से होकर गुजरता है उसका कुछ अंश बर्फ के टुकड़े की तरह उन हाथों में लग जाता है।" सब के मन में धन-सम्पत्ति की लिप्सा सुरसा की तरह मुँह बाये खड़ी है और वह कर्तव्य पूरा करने में बाधा डालती है।

एक बहुत पुरानी लोककथा है। किसी अनुष्ठान के लिए एक राजा ने अपने राज्य में घोषणा की कि सभी व्यक्ति एक-एक लोटा दूध राज्य के कुँए में सवेरा होने से पहले ही लाकर डालें। हर व्यक्ति ने विचार किया कि यदि सिर्फ मैं दूध के बदले पानी का

लोटा डालूँ तो राजा को क्या पता चल सकता है। आश्चर्य की बात यह हुई कि यही विचार सबके मन में उत्पन्न हुआ। राजा ने दिन चढ़ने पर जब कुंएँ में झाँका तब देखा कि सभी ने कुंएँ में दूध की जगह पानी ही डाला है।

राजनीति ने वैचारिक क्रांति में सदा महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। आज लाखों रुपये लगाकर लोग चुनाव जीतकर प्रान्तीय अथवा केन्द्रीय सरकार में सम्मिलित होना चाहते हैं। उनके सामने नाना प्रकार के सपने रहते हैं, जिन्हें वे विजयी होने पर पूरा करना चाहते हैं। उनके परिचित और सगे-सम्बन्धी भी उनसे कुछ आशा रखते हैं। इसी का असर होता है जनता पर। वह भी उसी राह पर चलना चाहती है।

एक समय था, जब लोग अपने परिवार में किसी को—डाक्टर, शिक्षक, इंजीनियर आदि बनाना प्रतिष्ठा की बात अनुभव करते थे। समाज में उन्हें आदर की दृष्टि से देखा जाता था। उस समय उनका उद्देश्य रहता था दूसरों की भलाई करना। आज उच्च शिक्षा केवल व्ययसाध्य ही नहीं हो गई है, बल्कि उसका एक मात्र उद्देश्य भी हो गया है धन कमाना।

कुछ समय पहले तक लोग इस उद्देश्य से बगीचा लगाते थे कि लोग वहाँ आयेंगे, विश्राम करेंगे और फल खायेंगे। आज ऐसे सभी स्थानों पर काँटों के तार लगा दिये गये हैं। बगीचों में फल सिर्फ बाजार में बिक्री के लिए चौकी-पहरे में रखे जाते हैं।

हम आज उस व्यक्ति को अच्छा समझते हैं, जो घूस लेकर काम करवा दे। हमारे दैनिक जीवन में हमने जैसे यही मापदण्ड

मनुष्य की परख का बना लिया हैं। हम सोंचते हैं, रेल का टी-टी पैसा लेंकर सीट की व्यवस्था कर दे। टैक्सी ड्राइवर कुछ अधिक पैसा लेकर हमें बैठा ले। डाक्टर फीस लेकर बार-बार घर पर आकर रोगी को देख ले। पुलिस कुछ लेंकर गाड़ी बे-समय पार करवा दे। सिनेमा का टिकट वेचने वाला ऊँचे दाम में टिकट देकर हमारा मनोरंजन करने में सहयोग दे। अध्यापक कुछ लेंकर बच्चों का दाखिला करवा दे—उन्हें पास करवा दे। कैसे भी ले-देकर कोई नौकरी दिलवा दे। ईमानदारी से कोई हमारा काम न कर पाये, यही गलत है, अव्यावहारिक है।

आज हर व्यक्ति अपने वच्चों को पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के स्कूलों में भर्ती कराना चाहता है। हमारी संस्कृति पर इसका असर धीरे-धीरे होता जा रहा है। वह समय दूर नहीं, जब सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में भी हमें कुपरिणाम भोगने पड़ेंगे।

द्रौपदी ने मृत्यु-शैय्या पर पड़े भीष्म पितामह से यह जानना चाहा कि चीर-हरण के समय आप चुप कैसे थे, तो भीष्म ने यही बताया कि कौरवों के अन्न ने हमें पापी और अन्यायी का साथ देने के लिए विवश कर दिया था—उनका खून त्याज्य अन्न ग्रहण करने के कारण दूषित हो गया था। भोजन की श्रेष्ठता और शुद्धता केवल खाद्य सामग्री के गुणों पर ही आधारित नहीं होती, बल्कि इस बात पर भी होती है कि वह किस प्रवृत्ति, किन विचारों से प्रेरित होकर कमायें हुए धन से प्राप्त किया गया है। आज समुद्रों, नदियों, वातावरण आदि के प्रदूषण को अविलम्ब रोकने के लिए चारों ओर आवाज उठाई जा रही है, किन्तु रक्त का प्रदूषण सबसे भयानक है।

वह हमारी पीढ़ी, हमारे समाज और व्यक्तित्व को कुरूप वनाने में सहायक हो रहा है।

रक्त, शक्ति और ऊर्जा का स्रोत भी है। आज हम अपने भीतर टटोल कर देखते हैं तो शक्ति और ऊर्जा का अभाव है। अन्याय को देखकर खौल उठना रक्त का शाश्वत धर्म है, किन्तु आज यदि खून में उवाल नहीं आता और वह उवलने के क्षणों में ठंडा रहता है, तो क्या यह सोचने की बात नहीं ? रक्त-सम्बन्धों में जो अपनत्व, त्याग तड़प और स्थायित्व स्वाभाविक है, क्या वह कहीं दिखाई पड़ रहा है ?

हमारे शरीर के रक्त का रंग नहीं वदला, उसके प्रवाह की गति भी नहीं वदली, केवल उसका जन्मजात गुण और धर्म वदल गया है। क्या यह सिद्ध नहीं करता कि हमारे खून में मिलावट हो रही है, रक्त प्रदूषण बढ़ रहा है ?

वाइविल में भी खून को ही जीवन माना गया है। यह निर्वि-वाद सत्य है कि हमारे जीवन की वदलती हुई दिशा, वदलती हुई विचारधारा और खतरनाक मोड़ लेती हुई प्रवृत्तियाँ हमारे शरीर में वहते हुए खून के गुण और धर्म के परिवर्तन से प्रभावित हैं।

हम शुभ चिन्तन और सत्कार्यों में अपने मन को केंद्रित कर, परिश्रम और ईमानदारी को धनोपार्जन का आधार वनायें और अपनी मानसिक एवं शारीरिक खुराक को नियमित एवं संतुलित करें, तभी हमारा खून शुद्ध होगा और उस खून से एक ऐसी शक्ति पुनः हमारे भीतर स्थापित होगी, जो अन्याय को कदापि सहन नहीं करेगी और जीवन में ऊँचाई की ओर निरन्तर वढ़ने की ऊर्जा प्रदान करेगी।

देवता पूज्य क्यों ?

□ □ □

भगवान् विष्णु ने एक विशेष अवसर पर देवताओं और असुरों को रात्रि-भोज के लिए आमन्त्रित किया। दोनों ही समय पर पहुंच गये। भोज के अवसर पर हर बार पहले देवताओं को भोजन कराया जाता था, असुरों को उनके बाद। असुरों ने भगवान् विष्णु से इस बारे में आपत्ति की और कहा—आप हमेशा पक्षपात करते हैं, देवताओं को अधिक सम्मान देते हैं। इस बार हम उन्हें पहले भोजन नहीं करने देंगे, हम पहले भोजन करेंगे।

विष्णु एक क्षण सोचते रहे। उन्होंने असुरों का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और एक शर्त रखी। शर्त यह थी कि भोजन करने वालों के हाथ में एक लकड़ी की चम्मच, जो हाथ से थोड़ी बड़ी होगी, बाँध दी जायेगी। उसी चम्मच से सबको करना पड़ेगा। देवता व असुर दोनों के लिए ही यह शर्त रखी गई थी, अतः किसी को कोई आपत्ति नहीं हुई।

असुर कतार में बैठ गये। भोजन परोसने का कार्य प्रारम्भ हुआ। नाना प्रकार के स्वादिष्ट भोजन परोसे जा रहे थे। असुर उनकी सुगंध से ही उतावले हो रहे थे। परोसने का काम पूरा होने के पहले ही उन्होंने अपने हाथ चलाने शुरू कर दिए। बड़ी चम्मच

का तमाशा अब शुरू हुआ। चम्मच थोड़ी बड़ी होने के कारण मुँह से आगे निकल जाती थी और भोजन मुँह में ठीक तरह पहुँच ही नहीं पा रहा था। भोजन-सामग्री उनके कपड़ों पर गिर रही थी। सारे असुर परेशान थे। बेचारे शर्म के मारे दबे जा रहे थे, पर किंकर्तव्यविमूढ़ थे। किसी तरह पत्तल का सारा खाना इधर-उधर हो जाने पर वे खड़े हो गये। उनके चेहरे देखने लायक थे। हर चेहरे पर उत्सुकता की एक रेखा नजर आ रही थी। देवताओं का भी यही हाल देखने के लिए वे नीची नजर करके विश्राम कक्ष में जाकर बैठ गये।

देवताओं के हाथ में भी लकड़ी की चम्मच उसी तरह बाँध दी गई। भोजन परोसा गया, उनसे आसन ग्रहण करने का अनुरोध किया गया। देवताओं ने भोजन शुरू करने के पहले एक दूसरे के सामने अपने आसन इस प्रकार लगा लिए कि एक दूसरे के मुँह आमने-सामने थे।

असुर सारी गतिविधि बड़े कौतूहल के साथ देख रहे थे। उनकी आँखें फटी-सी रह गयीं, जब उन्होंने देखा कि देवता बड़े आनन्द से भोजन का स्वाद ले रहे थे। प्रत्येक देवता अपने सामने बैठे देवता को मजे से भोजन खिला रहा था। उन्हें कोई कठिनाई नहीं हो रही थी। आपसी सहयोग व दूसरों के प्रति सहयोग, यही तो है देवत्व गुण। इसी देवत्व गुण के कारण देवता पूज्य हैं।

सत्य जिन्दा है आज भी

□ □ □

सत्य जिन्दा है, यह बात सबको असत्य व बेतुकी लगने लगी है। हर सुबह अखबार में लूट, हत्या, भ्रष्टाचार, डकैती, बेईमानी आदि से सम्बन्धित छपी हुई खबरें पढ़ते-पढ़ते आम आदमी के मन में यह विश्वास बैठ गया कि सत्य अब जिन्दा नहीं है। सत्य मर चुका है। आम आदमी, राजनेता, अध्यापक, चिकित्सक, मालिक, कर्मचारी किसी न किसी रूप में सत्य का गला घोंटता नजर आता है। कुर्सी पानी हो या नौकरी, कारोबार बढ़ाना हो या धन कमाना, अस्पताल में रोगी की चिकित्सा करानी हो या स्कूल में बच्चों की भर्ती व शिक्षा, अदालत में मुकदमा जीतना हो या बैंक से ऋण लेना, रेलवे रिजर्वेशन लेना हो या कोई परमिट हासिल करना हो, हर काम में सत्य की अवहेलना और झूठ तथा गलत रीति का सहारा लेना मनुष्य का स्वभाव बन गया है। और तो और, श्मशान में मृतक दाह के लिए भी इसी की आवश्यकता पड़ती है।

आलीशान कोठियाँ, कीमती गाड़ियाँ, शान-शौकत और ऐशो-आराम के सामान, बड़े-बड़े होटलों में पार्टियाँ, धन की चमक-दमक, फिजूलखर्ची और भोग-विलास की ढेर सारी सामग्री देखकर साधारण आदमी का मन खिन्न हो जाता है, मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है और वह सोचने लगता है कि क्या सत्य जिन्दा है? उसका

प्रश्न निराधार नहीं होता। उसको कुण्ठा निराशा और हीन भावना भले ही विश्वास दिलाये कि सत्य जिन्दा नहीं, किन्तु सच्चाई यह है कि सत्य जिन्दा है, यह मरा नहीं है, कभी मरेगा भी नहीं।

असत्य की राख की ढेरी में सत्य छुपा बैठाहै। बेईमानी करने वाला मालिक मन से कभी नहीं चाहता कि उसका नौकर बेईमानी करे। शराबी बाप कभी नहीं चाहता कि उसका बेटा शराबी बने। मिलावट करने वाला, कम तौलने वाला, घूसखोर, डकैत, चोर, कभी भी अपने समान पेशेवाले की प्रशंसा नहीं करता, निन्दा ही करता है।

आज तक किसी भी साहित्य में सत्य पर असत्य की विजय का वर्णन करके, मनुष्य को पतन की ओर ले जाने की चेष्टा नहीं की गई। सत्य का गुणगान प्राचीन काल से अब तक आबाधगति से चल रहा है। राम, कृष्ण, हरिश्चन्द्र, युधिष्ठिर, बुद्ध, महावीर, ईसा, गुरु नानक, हजरत मोहम्मद, सभी महान पुरुषों की पूजा सत्य के महान प्रतिष्ठाता और मार्ग दर्शक के रूप में आज भी होती है। ध्रुव सत्य है यह। आज तक सिर्फ अपने लिए धन-शक्ति-ज्ञान संग्रह करने वालों को इतिहास के पृष्ठों पर स्थान नहीं मिला, समाज में प्रतिष्ठा नहीं मिली।

आये दिन दिवाला निकलने की घटनाओं के बावजूद उधार लेने का धंधा बन्द नहीं हुआ। माल के उधार की रकम डूब जाने पर भी उधारी के व्यवसाय में बराबर वृद्धि हो रही है। क्या ये तथ्य सत्य के विजय होने का प्रमाण नहीं देते ?

साधु-महात्माओं के प्रवचनों, तीर्थों, पूजा-स्थलों, धार्मिक मेलों में उमड़ती हुई भीड़ आखिर किसलिए दिखाई पड़ती है ? सच्चाई ये है कि असत्य से ऊबे और त्रस्त लोग सत्य की खोज में उन सभी स्थानों में भटकते फिर रहे हैं, जहाँ उसके मिलने की आशा है। हमारे धार्मिक व राष्ट्रीय पर्व-त्यौहार सत्य की प्रतिष्ठा के ही द्योतक हैं।

राणाप्रताप के नाम से स्थापित एक विद्यालय के छात्रों ने अपने अध्यापक से जिज्ञासा प्रकट की—"यदि जीवन में सफलता को महत्व नहीं दिया जाय तो फिर सफलता के लिए कोई क्यों प्रयास करेगा ?"

अध्यापक ने उत्तर दिया—"यदि सफलता ही जीवन की कसौटी है तो इस विद्यालय का नाम राणाप्रताप की जगह मानसिंह विद्यालय क्यों न रखा जाय ? सफलता तो असत्य का आचरण करने वाले को भी मिलती है, किन्तु सदा याद रखो, सत्य सफलता से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है और अन्त में वही विजयी होता है।

सिकन्दर महान, सम्राट अशोक व अन्य अनेक उदाहरण हैं, जिनमें अन्त में सभी को सत्य की विजय स्वीकार करनी पड़ी।

मानव-शरीर पाँच तत्त्वों—मिट्टी, जल, अग्नि, आकाश, और हवा से बना है। ये पाँचों तत्व सत्य के प्रतीक हैं। मिट्टी असत्य को ग्रहण कर उसे सत्य का रूप देती है। बीज में नये अंकुर के रूप में नया जीवन उत्पन्न करती है। जल सारी गन्दगी को आत्मसात् करके, उसे प्राण तत्व के रूप में परिवर्तित करता है। अग्नि अशुद्ध तत्वों को ग्रहण करके उन्हें शुद्ध बना देती है। आकाश सारी त्रुटियों को ठीक कर रखता है और हवा निरन्तर प्राणतत्व का पोषण

करती रहती है। हम सत्य से ही बने हैं, सत्य हमारा जनक है। अतः सत्य हमारे स्वरूप में जीवित है। सत्य की मृत्यु का अर्थ है, हमारे जगत् की मृत्यु। सत्य को मृत मान बैठना, पराजित समझ लेना अथवा असत्य का दास कहना सर्वथा अनुचित है।

असत्य कुछ क्षणों के लिए भले ही सत्य का स्वामी बनने का नाटक करे, किन्तु वास्तव में वह सत्य के चरणों में ही रहेगा। 'सत्यमेव जयते' यह आदिमकाल से केवल हमारे राष्ट्र की आत्मा का प्रतीक ही नहीं, बल्कि सारे विश्व में हर प्राणी के लिए भारत का शाश्वत सन्देश भी है। सत्य कल भी जिन्दा था, आज भी है और कल भी रहेगा।

भारद्वाज के अन्त समय उन्हें लेने के लिये देवदूत विमान लाये। चलने से पूर्व उन्होंने वहाँ की परिस्थितियों के बारे में पूछा। विद्योपार्जन और सेवा सहायता के लिए वहाँ कितने अवसर हैं। देवदूत इतना ही बता सके कि वहाँ सभी सुविधाओं के उपयोग भर की व्यवस्था है।

भारद्वाज ने चलने से इन्कार कर दिया और कहा मुझे मनुष्यों के बीच ही जीने मरने दें ताकि सत्य तक पहुँचाने वाला ज्ञान निरन्तर अर्जित कर सकूँ और सेवा साधना का संतोष प्राप्त करता रहूँ।

देवदूतों का आग्रह अस्वीकार कर दिया गया और महर्षि ने जन्म-मरण का सिलसिला जारी रखा। मनुष्य शरीर में ही वो देवोपम उपलब्धियाँ प्राप्त करते रहे।

दीपावली का दीपक

□ □ □

समय बीत रहा है। अभी से चेतो और संसार को प्रकाश प्रदान करने के लिये जो कुछ भी कर सकते हो करो। अन्धकार को दूर कर लोगों को सही व ज्योतिमय पथ दिखलाओ।

जीवन क्षण-भंगुर है। वायु का एक हल्का-सा झोंका जीवन प्रदीप को बुझाकर काल के गहन तम में डाल सकता है। जब तक जीओ, औरों के लिये जीओ।

स्वयं को जलाकर औरों को ज्योति दान दो। केवल अपने लिए रोशनी करना स्वार्थ है, घातक है। स्वार्थ से पूर्ण विचारों का दमन करो।

अन्तर में स्नेह भरकर उदार बनो, जितना ग्रहण करो उसका सदुपयोग दूसरे को देने में करो।

चन्द्रमा बनकर अपनी चाँदनी समस्त विश्व में बिखेरो, पर जो कलंक है उसे अपने पास रखो। सबको यश देकर, अपयश स्वयं रखो।

जो अपने को संकट की आग में तपाता है उसे ही कुन्दन रूपी सफलता मिलती है। संकट से डरने वाला ही असफल होता है।

किसी व्यक्ति का सम्मान उसकी उपलब्धियों से नहीं, अपितु अपनी अर्जित निधि को मानव-हित में दान करने से होता है।

अपने अस्तित्व की चिन्ता न करो, जो कुछ ईश्वर द्वारा प्राप्त है, उसका सदुपयोग करो।

सतत् जागते रहो और सबको जागने की प्रेरणा दो। जागरण ही जीवन है।

स्वयं के नीचे अँधेरा देखकर विचलित न हो, यह कार्य अन्य दीपक पर छोड़ दो। वह स्वयं जलकर तुम्हारे नीचे आलोक फैलाएगा।

जो स्वयं को जलाकर औरों को ज्योति देता है, वह मृत्यु के बाद भी ज्योति प्रदान करता है। भावी पीढ़ियों को प्रकाश देने के लिए सचेष्ट रहो।

देवता की प्रवृत्ति है देना, राक्षसों की प्रवृत्ति है रखना। देव-प्रवृत्ति का पालन करो।

मृत्यु का अर्थ है जीवन भर का हिसाब (पाप-पुण्य) बताने का दिन। जो औरों के लिए कार्य करता है, उसी का नाम जीवन है।

मेरा कुछ नहीं है, जो है वह समष्टि के लिये है मात्र व्यष्टि-साधना अनुचित ही नहीं, अमानवीय भी है········
········वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।

दुःख में सुमिरन सब करे

□ □ □

मनुष्य में स्वार्थ की प्रवृत्ति जन्म से होती है। उससे वह जीवन भर मुक्त नहीं हो पाता। गोस्वामी तुलसीदास ने भी लिखा है—
स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। सुर नर-मुनि सब की यह रीती।
जो लोग स्वार्थ की प्रवृत्ति को त्याग देने में सफल हो जाते हैं, वे अन्त में साधु, सन्त, महात्मा और सज्जन कहकर पुकारे जाते हैं। उनका जीवन त्याग और परमार्थ की दिव्यता से आलोकित हो उठता है।

सुख और दुःख के निरन्तर चलते हुए चक्र से मनुष्य का जीवन बँधा हुआ है। इन दोनों ही अवस्थाओं में उसके स्वभाव-चरित्र, गुणों, व्यवहार और आदतों की परीक्षा होती है। कविवर रहीम ने मनुष्य के स्वभाव के विषय में एक दोहा लिखा है—

दुःख में सुमिरन सब करें, सुख में करे न कोय।
जो सुख में सुमिरन न करें, दुःख काहे को होय।।

दोहे का आशय यह है कि स्वार्थ की जन्मजात प्रवृत्ति हमें अभावों और कष्टों के दिनों में ईश्वर के सामने कृपा की भीख मांगने के लिये, हाथ पसारने के लिए विवश करती है, मगर दुर्दिन समाप्त होते ही ईश्वर के पूजन, चिन्तन और स्मरण के लिये समय निकालना हमें अनावश्यक प्रतीत होने लगता है। ठीक इसी प्रकार दुःख में सहानु-

भूति और सहयोग पाने के लिये व्यक्ति अपने मित्रों, परिचितों और सम्बन्धियों के दरवाजे खटखटाता फिरता है, मगर दुःख दूर होते ही वह अपने सहायक, आश्रयदाता या हितैषी को याद तक नहीं करता।

आपने देखा होगा कि जब किसी को नौकरी की आवश्यकता होती है तो वह सिफारिश के लिए प्रभावशाली व्यक्तियों के पास अनेक बार घूमता है, लेकिन नौकरी मिल जाने के बाद वह कृपालु सहायक के पास जाकर कृतज्ञतावश यह कहना भी जरूरी नहीं समझता कि उसी के कारण उसको नौकरी मिली है। वह उसके पास पुनः तभी जाता है जब उसकी लगी हुई नौकरी में कोई विघ्न आता है या किसी कारणवश नौकरी छूट जाती है। जरा सोचिये, ऐसी हालत में क्या उस व्यवहारहीन व्यक्ति के प्रति किसी के मन में सहानुभूति पैदा होगी ?

विवाह-शादी या अन्य अवसरों पर अनेक वस्तुएँ दूसरें से माँग कर उपयोग में लाई जाती हैं। इसके लिए अनेक लोगों से अनुरोध करना पड़ता है। काम पूरा हो जाने के बाद प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जिन वस्तुओं को पाने के लिए परिश्रम व प्रयास किया जाता है, उन्हें लौटाने में आलस्य और लापरवाही दिखाई जाती है। देने वाले व्यक्ति स्वयं अपनी वस्तुओं के लिये दौड़-धूप करते हैं। इस विषय में प्रचलित लोकोक्ति अक्षरशः सत्य है, जिसमें कहा गया है— "लेते समय कण की, देते समय मन की" अर्थात् जो वस्तु लेते समय कण के समान हल्की लगती है, वह लौटाने के समय मनों वजन की मालूम पड़ती है।

दु:ख में सुमिरन वाली बात की पुष्टि इस रोचक कथा से भी होती है। एक बार एक व्यक्ति ताड़ के वृक्ष पर चढ़ गया। ऊपर चढ़ जाने के बाद उसने नीचे की तरफ देखा तो उसके होश उड़ गये। उसको ऐसा मालूम हुआ कि अब वह सही-सलामत नीचे जा ही नहीं सकेगा। उसने मन ही मन भगवान को याद किया और मनौती मानी कि यदि वह सकुशल नीचे उतर जायेगा तो दस नारियल का प्रसाद चढ़ायेगा। मनौती मानकर वह नीचे उतरने लगा। पेड़ के बीच में पहुँचने पर उसके मन में आया कि दस नारियल तो बहुत होता है, पाँच नारियल का भी प्रसाद चढ़ाने से चलेगा।

भगवान का स्मरण करते हुए वह व्यक्ति सकुशल नीचे उतर आया। उसने एक ठण्डी साँस ली। सोचने लगा, उतर ही चुके हैं—एक नारियल का प्रसाद ही काफी रहेगा। भगवान तो प्रसाद के भूखे नहीं हैं। इसी सोच-विचार में घर पहुँचा और शनैः-शनैः भूल गया उस एक नारियल को भी।

अथर्व वेद में कहा गया है—"मेरे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ है और बांयें हाथ में सफलता।" इस उक्ति की सत्यता को परखने के लिये हमें अपने जीवन में प्रतिक्षण तत्पर रहना चाहिये। सफलता के सूत हमारे ईर्द-गिर्द बिखरे पड़े हैं। हमें उन्हें पहचानने, अपनाने और उपयोग में लाने की बात सोचनी होगी। जो कुछ हम देखते हैं, सुनते हैं उनमें से तत्वपूर्ण चीजों को ग्रहण करना फलदायी है। केवल दर्शक या श्रोता बनने से हमारे हाथ कुछ भी नहीं लग सकता है।

पाप-पुण्य का महत्व

□ □ □

अजीत अपने पिता के साथ भोजन कर रहा था। भोजन करने के बाद वह पानी के लिये खड़ा हो गया। उसने रसोई के पास रखे हुए घड़े की ओर अपना हाथ वढ़ाया। उसे ऐसा करते देखकर सहसा उसके पिताजी ने पुकारा—"अजीत क्या कर रहे हो? घड़े को हाथ धोकर छूना चाहिये। बिना हाथ धोये इसे छूओगे तो पाप लगेगा।" अजीत पिताजी के मुँह से ऐसी वात सुनकर स्तव्ध खड़ा रह गया। उसने अपने हाथ धोये और उसके वाद ही घड़े से पानी लेकर पिया। पानी पीकर वह अपने पिताजी के वगल में जाकर बैठ गया। उसके पिताजी ने अजीत के परेशान चेहरे पर नजर डाली। अजीत ने पूछा, पिताजी! आपने मेरी छोटी-सी गलती के लिये पाप शब्द का प्रयोग कैसे किया?

अजीत के पिताजी ने उसे समझाते हुए कहा—"तुम्हारे हाथ में अन्न लगा हुआ था। हाथ न धोये विना घड़े को छूने से यह अन्न घड़े में लग जाता और दो-चार दिनों के वाद उस अन्न कण के सड़ने से घड़े में कीड़े पड़ जाते। घड़े में कीड़ा होने से या तो उसको फेंक देना पड़ता या गरम उवले हुए पानी से धोना पड़ता। इस कारण जो कीटाणु या कीड़े घड़े में लगे हुए होते वे सभी मर जाते, जिनके

नाश का कारण तुम बनते। यदि बार-बार इसी प्रकार बिना हाथ साफ किये घड़े का उपयोग किया जाता, तो बीमारी के कीटाणु पैदा हो जाते और हम सबको बीमार होना पड़ता।

अजीत को बात कुछ समझ में आयी। वह एक प्रश्न और पूछ बैठा। पिछले दिन उसके दोस्त मोहन ने उसके ऊपर थूक दिया था, तब मोहन की माँ ने डाँटते हुए यही बात कही थी, "यदि तुम दूसरों के ऊपर थूकोगे तो तुम्हें पाप लगेगा।" अजीत ने सहज भाव से अपने पिता से पूछा, "क्या वास्तव में दूसरों के ऊपर थूकने से पाप लगता है ?" अजीत के पिता ने उसे समझाया कि हमारे थूक में कई तरह के कीटाणु रहते हैं। उसमें बीमारियों के कीटाणु भी रहते हैं। इसी कारण किसी पर थूकने से अनायास हम अपनी बीमारी का शिकार दूसरे को बनाते हैं। हमने जिसके ऊपर थूका है, वह तो बुरे परिणाम भोगेगा ही, साथ ही उसे बीमार देख कर हमारे मन को भी कष्ट होगा। इसलिए ऐसा करने को पाप की संज्ञा दी गयी है। उन्होंने आगे बताया कि क्षय (टी० बी०), हैजा व अन्य कई बीमारियाँ तो ऐसी हैं, जो छूत से अधिक फैलती हैं। इसी कारण से हमें ऐसे कार्य नहीं करने चाहिये, जिनसे दूसरों को नुकसान पहुँचे।

अजीत के दिमाग में कई ऐसी घटनाएँ घूमने लगीं, जिन घटनाओं के समय उसे पाप शब्द सुनने में आया था। जैसे—कुत्ते को मारना, गाय को छेड़ना, अन्धे को रास्ता न दिखाना, आदि। उसके पिताजी ने समझाया कि जो कार्य हम दूसरों के भले के लिये जाने या अनजाने में करते हैं, वही पुण्य है।

अजीत अपने दोस्तों के साथ बैठ कर ऐसी चर्चाएँ सुनता था कि कई लोग पैसे कमाने के लिये नकली दवाएँ बेचते हैं, घी में मिलावट करते हैं, मसालों में अन्य चीजें मिलाते हैं। उसने अपने पिताजी से पूछा, "क्या पैसा कमाने के लिए नकली दवा बेचना, घी में मिलावट करना, मसालों आदि में मिलावट करना पाप नहीं है ?" पिताजी बोले कि इस पाप को आज की भाषा में गैरकानूनी कार्य भी कहते हैं। ऐसे कार्य करने वाले सरकार के विभिन्न विभागों द्वारा पकड़े भी जाते हैं। उन्हें सजा भी भुगतनी होती है।

अजीत अपने पिता के उत्तर से संतुष्ट नहीं था। उसने सुना था, कि नकली दवा बेचने वालों के पास अच्छे मकान हैं, शानदार मोटर गाड़ियाँ हैं, घर में रेडियो, टेलीविजन आदि सुख-साधन मौजूद हैं। उनके परिवार के लोग कीमती कपड़े पहनते हैं। उसने पूछा— "ऐसे व्यक्तियों को पाप क्यों नहीं लगता ?" पिता यह प्रश्न सुनकर भौंचक्के रह गये। उन्होंने कोई जवाब न देकर बात को टालना चाहा। उन्होंने अजीत को समझाया, "पाप का परिणाम समय पर निकलता है, अतः हमें उनके ऐसे कार्यों को देखकर या सुनकर उनकी ओर आकर्षित नहीं होना चाहिये। ऐसे कार्यों से बचकर रहना चाहिए।"

इस बारे में विस्तार से समझाते हुए उन्होंने कहा, "हमारे प्राचीन धर्म में कुएँ या नदी में थूकना, मलमूत्र करना आदि को पाप बताया गया है। पहले के लोग पाप के भय से ऐसा गलत काम नहीं करते थे, लेकिन नई सभ्यता के सामने पुरानी मान्यताएँ ढीली पड़

गई। लोगों ने गंगा जैसी पवित्र नदी को भी नहीं छोड़ा। कारखानों के जहरीलें मलवों और शहरों के गंदे नालों से खुले रूप में नदी को गन्दा करने लगे। यही कारण है कि आज हमारी सरकार के हजारों-करोड़ों रुपये सिर्फ गंगा नदी का प्रदूषण दूर करने के लिए खर्च हो रहे हैं। वड़ी-वड़ी योजनाएँ वन रही हैं। हमारी सरकार शायद कार्य को विशेष महत्व नहीं देती है। यदि "पाप" लगेगा—इसी का प्रचार किया जाये और लोगों को "पाप" शब्द का सही अर्थ समझाया जा सके तो प्रदूषण समाप्त करने में धन खर्च करने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। गन्दगी हो या प्रदूषण, उसे दूर करने के लिये जनसाधारण का मन परिवर्तन करना आवश्यक है। उन्होंने अतित को समझाया कि आज भी इस धर्मप्राण देश के निवासी पाप शब्द को वड़ा महत्व देते हैं। धर्म और पाप के बोध के कारण ही हजारों वर्षों से गंगा की पवित्रता की रक्षा होती रही।

अजीत के पिता ने उसे अपने साथियों को भी समझाने के लिये कहा कि वे केले या अन्य फलों के छिलके सड़क पर न डालें, दीवालों पर जहाँ-तहाँ न थूकें, जहाँ-तहाँ पेशाव या शौच न करें। कूड़ा नियत्त स्थान पर डालकर मकान के इधर-उधर न फेंके, गाली देना, किसी के पेट पर लात मारना, धोखा देना आदि सभी पाप की सीमा में ही आते हैं। अजीत के पिता ने उसे अपने पड़ोस के मकान की गली में पड़े कूड़े को दिखाया और वताया कि यह कूड़ा वर्षों से पड़ा सड़ रहा था। उसे यह भी मालूम हुआ कि कूड़े को आस-पास के मकानों में रहने वालों ने फेंका था और उसे साफ कराने में किसी की रुचि नहीं थी। कूड़े के कारण मच्छरों, मक्खियों और नाना

प्रकार के कीड़े-मकोड़ों की संख्या बढ़ रही थी और स्वास्थ्य नष्ट करने वाला वातावरण उत्पन्न हो गया था।

अजीत ने सुना था कि पेड़ काटने से भी पाप लगता है। उसकी जिज्ञासा भी थी इस बारे में जानने के लिए। पिता ने पूछने पर समझाया, "पेड़ दिन में आक्सीजन गैस छोड़ते हैं, जो हमारे जीने के लिए बहुत जरूरी है। यदि हम इन पेड़ों को काट देंगे तो हमें आक्सीजन कहाँ से मिलेगी ? पीपल का पेड़ दिन-रात आक्सीजन देता है। जो कार्बनडाई आक्साईड गैस हमारी साँस से बाहर निकलती है, उसे ये पेड़ ग्रहण करते हैं। इसी कारण हमारे धर्म में पीपल, बड़ आदि पेड़ों की पूजा की जाती है।"

पाप और पुण्य की परिभाषा समय के साथ बदल गई है। अब कानूनी और गैरकानूनी शब्दों का उपयोग किया जाने लगा है। पाप और पुण्य का सम्बन्ध हमारी आत्मा से है, लेकिन अब बड़ा से बड़ा पाप करते समय मनुष्य यही सोचता है कि कानून के शिकंजे में मैं न पकड़ा जाऊँ। अपने बचाव का ध्यान रखते हुए वह बड़ा से बड़ा पाप करने में भी नहीं हिचकिचाता। आज देश में नर-संहार, डकैती, चोरी आदि के समाचार प्रतिदिन अखबारों में पढ़ने को मिलते हैं।

अजीत के पिता ने अपने बुद्धिमान बेटे को समझाया—"पाप से हमेशा दूर रहो और पुण्य कार्यों को ही करो। संसार में कौन पाप कर रहा है, इसका जवाब तुम्हें नहीं देना है। जवाब तुम्हें उस पाप के लिये देना पड़ेगा, जो तुम्हारे मन में, जो तुम्हारे आचरण और व्यवहार में है।"

श्रीकृष्ण-सुदामा मैत्री : एक नवीन रहस्य

□ □ □

श्री कृष्ण-सुदामा की मित्रता, श्रेष्ठ मैत्री का अद्वितीय उदाहरण है। इस पुरातन कथा को एक नयी दृष्टि में देखें तो एक नया रहस्य हमारे सामने उद्घाटित होगा। कथासार यह है कि दोनों क्षिप्रा नदी के किनारे सांदीपनि ऋषि के आश्रम में एक साथ पढ़ते थे। दोनों के बीच प्रगाढ़ मित्रता हो गयी। विद्याध्ययन के बाद दोनो को अलग-अलग प्रकार का जीवन मिला था। दोनों की स्थितियों में जमीन आसमान का अन्तर था।

सुदामा अध्यापन का कार्य करते थे। निर्धन थे। परिवार की गाड़ी वड़ी कठिनाई से खींच पाते थे। अपनी धर्मपत्नी के विशेष अनुरोध पर अपनी दरिद्रता दूर करने की आशा लेकर बाल-सखा श्रीकृष्ण से मिलने द्वारका गये। वहाँ से वापस लौटे तो अपनी टूटी झोपड़ी के स्थान पर विशाल हवेली उन्हें दिखायी पड़ी। दास-दासियाँ और भोग-विलास की ढेर सारी चीजें नजर आयीं। वस्तुतः चमत्कार का रहस्य कुछ और ही है।

सुदामा द्वारका पहुँचे। श्रीकृष्ण को द्वारपाल से अपने सहपाठी सुदामा के आगमन का समाचार ज्यों ही मिला, वे स्वयं दौड़कर

द्वार पर आये। सुदामा को उन्होंने अपनी छाती से लगा लिया, अपने सिंहासन पर बैठाकर उनकी चरण-सेवा की। इस कार्य में अपनी रानियों को भी लगा दिया। मित्र की दीन दशा देखकर वे अपने आँसू नहीं रोक पाये।

सुदामा अपने साथ भेंट करने के लिए तन्दुल की एक छोटी-सी गठरी लाये थे, जिसे उन्होंने संकोचवश छिपा रखा था। श्रीकृष्ण ने वह गठरी छीनकर खोल ली और उसमें बँधे हुए तन्दुलों को बड़े चाव से खाना शुरू किया। खाते-खाते बोले—"नाना प्रकार के व्यंजनों में वह स्वाद कहाँ है, जो इन तन्दुलों में है।" सुदामा गद्‌गद् हो गये। सोचने लगे, मित्र हो तो ऐसा हो।

श्रीकृष्ण ने सुदामा से उनके परिवार का कुशल-क्षेम पूछा। बड़ी आत्मीयता के साथ कहा—"इस सांसारिक जाल में उलझकर गुरुकुल के उन दिनों का सारा आनन्द ही लुप्त हो गया।"

दोनों मित्रों ने एक साथ भोजन किया। उसके उपरान्त सुदामा को विश्राम करने के लिये कोमल शैय्या मिली तो नींद की बोझ से उसकी आँखें कुछ ही क्षणों में मुँदने लगीं। अर्धनिद्रा में उन्होंने देखा कि वे घर पहुँच गये हैं और वहाँ सब कुछ बदल गया है। झोपड़ी महल हो गई है। पत्नी सोने के थाल में आरती सजाये द्वार पर स्वागत के लिये खड़ी थी। दास-दासियों के झुण्ड सेवा में जुटे हुए थे।

सुदामा की आँखें आश्चर्य से फैल गयीं। सारा शरीर काँपने लगा। नाना प्रकार के विचार मन में उठने लगे। द्वारका में जो सत्कार मिला था, आँखो में रह-रह कर उभरने लगा।

सुदामा सोचने लगे—जो सम्मान आज यहाँ मिला है, क्या वह दुबारा आने पर भी मिलेगा ? अध्यापन करके जो आय होती है, क्या उससे इतने दास-दासियों का खर्च सँभल सकेगा ? अपनी सन्तानों का विवाह क्या वे अपने से दीन परिवार में कर सकेंगे ?

सुदामा के द्वारकापुरी से जाने के बाद उनकी धर्मपत्नी को धनी व्यक्तियों के रहन-सहन और जीवनचर्या की जानकारी प्राप्त करने की इच्छा हुई। वह कई घरों में गयी। उसे सम्पन्न परिवारों में अशान्ति का वातावरण मिला। स्त्रियों को उसने व्यर्थ के प्रपंचों और चर्चाओं में व्यस्त देखा। वह जहाँ भी गयी, वहाँ के लोगों में ईश्वर-चिन्तन के प्रति उदासीनता दिखायी पड़ी।

सुदामा के पुत्रों को भी पिता के द्वारका से लौटने के बाद धनी बन जाने का विश्वास होने लगा था। अतः वे धनी व्यक्तियों के लड़कों का स्वभाव, शौक, आचरण और तौर-तरीकों से परिचित होने की चेष्टा करने लगे। उन्होंने देखा कि धनी वर्ग के अधिकांश बच्चे जुआ, शराब और अनेक प्रकार के कुव्यसनों में लिप्त थे। उनमें धन का उपयोग गलत कामों में करने की प्रवृत्ति तेजी से पनप रही थी। यह देख सुदामा के पुत्रों के मन में घृणा भर गयी।

उधर सुदामा के मन-मस्तिष्क में विचारों का मंथन चल रहा था। उन्हें आत्मिक सुख त्याग कर भौतिक सुख पाने में कोई सार नहीं दिखायी दे रहा था। उन्होंने भविष्य का चिन्तन करते हुए यह जान लिया कि धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न होने के बाद जीवन के मूल धर्म और कर्तव्यों के प्रति कदाचित उनकी सजगता कायम न रह पाये।

उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि धन की लिप्सा अनन्त है। धन की तृष्णा मनुष्य को कहाँ से कहाँ ले जाती है। धन की लालसा पूर्ण करने के लिए कितने दुष्कर्म करने पड़ते हैं, कितने कुमार्गों पर पाँव रखने पड़ते हैं। इसकी कल्पना करके सुदामा का मन खिन्न हो गया। विचारों के प्रवाह में बहते-बहते वे न जाने कितनी दूर निकल गये।

द्वारकाधीश से मित्रता के नाम पर कुछ प्राप्त करके, सुदामा उन्हें दूसरों की दृष्टि में पक्षपाती नहीं बनाना चाहते थे। वे नहीं चाहते थे कि उनके मित्र पर लोग ऊँगली उठायें, आलोचनाओं की बौछार करें। सत्तासम्पन्न मित्र से लाभ उठाकर भावी शासकों के सामने एक गलत उदाहरण उपस्थित करना उनको अच्छा नहीं लगा।

गरीब वह है, जिसके मन से धन की चाह नहीं मिटती। धन से प्रतिष्ठा मिल सकती है, आत्मशान्ति नहीं। सुदामा ने यह भी सोचा कि धन-वैभव पा लेने के बाद उनके मन में कृष्ण-भक्ति के लिए सम्भवत: स्थान ही न रहे।

श्रीकृष्ण सुदामा को विचारमग्न देखकर, उनकी शैय्या के पायताने बैठ गये और उनके पैरों पर हाथ फेरने लगे। सुदामा की आँखों में गहराती हुई निद्रा टूट गयी। पलकों में आँसू भर आये। श्रीकृष्ण के प्रति उनके हृदय में जो प्रेम था, उसकी जगह प्रगाढ़ श्रद्धा ने ले ली।

श्रीकृष्ण ने सुदामा को विदा करते समय एक मर्मस्पर्शी बात कह दी। बोले—"सुदामा! लक्ष्मी का स्थान नारायण के चरणों में है, किन्तु लक्ष्मी-नारायण का स्थान तेरे चरणों में है।" बहुत बड़ी बात थी। यह सुनकर सुदामा की अन्तरात्मा आलोकित हो उठी। श्रीकृष्ण

उस क्षण उन्हें कितने विराट् लगे थे, और उससे भी विराट् लगी थी उनकी मित्रता ।

सुदामा के चेहरे पर विचित्र तेज था । घर लौटने पर पत्नी और बच्चों ने अश्रुपूर्ण नेत्रों से पिता को देखा । अब रहस्य की बात बताता हूँ । न सुदामा का घर बदला था, न अभाव भरे दिन बदले थे । बदली थी तो केवल एक ही चीज, वह थी सुदामा और उनके परिवार के लोगों की दृष्टि । वे गरीबी और दरिद्रता की अनुभूतियों से मुक्त हो गये थे ।

महात्मा का वरदान

एक महात्मा ने किसी भक्त की सेवा-भावना से प्रसन्न होकर उसे सात दिन के लिए पारस-मणि दी और कहा—"इसे छूने से लोहा सोना हो जाता है । जितने सोने की जरूरत हो, बना लो । सात दिन बाद यह वापिस ले ली जायेगी ।"

भक्त बड़ा प्रसन्न हुआ कि अब मेरी सारी दरिद्रता दूर हो जायेगी । पर वह था बड़ा कंजूस । सस्ता लोहा बड़ी तादाद में ढूँढने लगा । जिस दुकान पर भी वह गया, वहाँ उसकी समझ में लोहा थोड़ा था और मँहगा भी था । बहुत सस्ता और बहुत बड़ा ढेर ढूँढ़ने की लालच में वह कई नगरों में गया, पर उसे कहीं सन्तोष न हुआ ।

इसी भाग-दौड़ में सात दिन पूरे हो गये । मणि वापिस ले ली गई और वह रत्ती भर भी सोना प्राप्त न सका ।

सेवा का पथ :
जहाँ काँटे भी फूल बनते हैं

□ □ □

एक वार भगवान विष्णु ने एक आयोजन में देवों और असुरों को सहभोज पर आमंत्रित किया। असुरों ने उनके सामने अपनी यह अप्रसन्नता व्यक्त की कि सभी अवसरों पर जहाँ देवताओं को प्राथमिकता दी जाती है, वहाँ उनकी अवहेलना होती है। विष्णु ने उनकी बात सुनकर उन्हें उस रात के भोज में सबसे पहले भोजन करने के लिए कहा। असुर इस बात से बड़े प्रसन्न हुए भोज का प्रवन्ध किया गया। लम्बी कतार में आसन लगा दिये गये। आसनों के दोनों तरफ मिष्ठान्न से भरी थालियाँ सजा दी गयीं। असुरों से भोजन के लिए अनुरोध करते हुए विष्णु ने यह शर्त रखी कि उनके हाथ में दो फीट लम्बे लकड़ी के चम्मच बाँधे जायेंगे और उनसे ही उन्हें भोजन करना होगा। असुरों के हाथ में चम्मच बाँध दिये गये। वे आसनों के दोनों ओर जाकर बैठ गये। अजीब दृश्य था। चम्मच से भोजन उठाकर वे खाने की चेष्टा कर रहे थे, पर चम्मच मुँह से थोड़ी दूर ही रह जाती थी। मिठाइयाँ मुँह में जाने की बजाय इधर-उधर गिर रही थीं। उनका सारा शरीर मिठाईयों के रस से तर हो गया। असुरों को अपनी हालत देखकर बड़ी शर्मिन्दगी हुई। वे बिना भोजन किये ही विष्णु को बुरा-भला कहते हुए उठ गये।

उसी जगह अन्य आसनों पर इसी तरह देवताओं के लिए भी भोजन की व्यवस्था की गयी थी। उनके हाथों में भी लकड़ी के चम्मच बाँध दिये गये थे। देवताओं ने बुद्धि से काम लिया। असुर यह देखकर हैरान रह गये कि वे साधारण स्थिति में अपना भोजन कर रहे थे। हर देवता अपने सामने वाले को चम्मच से भोजन करा रहा था। इस तरह आमने-सामने वाले आपस में मजे से खाना खा रहे थे। सहयोग का यह उदाहरण सेवा-पथ पर चलने वालों के लिये प्रेरणादायी है।

इन्द्र के कोप के कारण भगवान श्रीकृष्ण के सामने गोवर्द्धन पर्वत उठाने की बात आयी। श्रीकृष्ण गोवर्द्धन पर्वत को अकेले ही उठा सकते थे, लेकिन उन्होंने सभी ग्वाल-बालों से अपना हाथ बँटाने का अनुरोध किया। ग्वाल-बाल उत्साह से श्रीकृष्ण के साथ जुट गये। श्रीकृष्ण ने गोवर्द्धन पर्वत उठाने के लिये अपनी अँगुली लगाई और ग्वाल-बाल ने अपने डंडे और लाठियाँ। गोवर्द्धन पर्वत उठा लिया गया। सभी खुश थे, क्योंकि परस्पर सहयोग से यह कार्य हुआ था। श्रीकृष्ण सिर्फ अपनी ही प्रशंसा नहीं चाहते थे, इसलिये उन्होंने इस कार्य में सभी को सहयोगी बनाया श्रेय पाने का झगड़ा ही सेवा-कार्यों की गति में बाधा उत्पन्न करता है, अतः श्रेय का समान विभाजन ही सभी दृष्टियों से नीतिसंगत है।

श्री हनुमानजी के बारे में कहा जाता है कि उन्हें उनके बल का स्मरण कराना पड़ता था। शाप के कारण वे अपना बल भूल जाते थे। जब तक कोई याद न दिलाये, उन्हें अपनी शक्ति का ज्ञान नहीं

होता था। इसका एक अर्थ यह भी है कि वे अपनी बड़ाई स्वयं नहीं करते थे। अपने द्वारा किये गये कार्यों का श्रेय वे भगवान श्रीराम को ही देते थे। कर्ता अपने किये गये कार्य के वारे में यदि स्वयं प्रचार करे, तो यह उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल न होकर विपरीत ही होगा।

हिन्दू धर्म में ब्रह्मा, विष्णु और महेश तीन प्रधान देवता हैं। ब्रह्मा का काम है निर्माण, विष्णु का पालन और शिव का संहार। भारत-वर्ष में ब्रह्मा का सिर्फ एक मन्दिर राजस्थान के अजमेर क्षेत्र पुष्कर में है। इसके अलावा कहीं भी ब्रह्मा का मन्दिर नहीं है। निर्माण करने वाले की पूजा नहीं होती। उसकी कृति में सभी कोई खोट ही निकालते हैं, पर निर्माण करने वाला ब्रह्मा किसी भी आलोचना पर ध्यान दिये विना निर्माण-कार्य किये जा रहा है। उसके मन में स्वयं की बड़ाई सुनने की इच्छा कभी भी उत्पन्न नहीं होती।

एक वार ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के पास एक व्यक्ति पहुँचा। वहाँ जाते ही उसने उन पर गालियों की बौछार शुरू कर दी। गाली सुनने पर भी विद्यासागर का चेहरा शान्त और सौम्य था। उन्होंने उसे अपने पास बुलाया और यह जानना चाहा कि उनके द्वारा उसका क्या भला किया गया है। वे जानते थे कि विना किसी का भला किये कोई किसी को अपशब्द नहीं वोलता। उनकी वात सही निकली। सेवा-पथ पर वढ़ने वालों के सामने ऐसे अनेक दृष्टान्त आयेंगे। उन्हें शान्तभाव से ही प्रत्येक स्थिति का सामना करना होगा और अपना धैर्य तथा संयम वनाये रखना होगा।

एक कार्यकर्ता आलोचनाओं से घवड़ा कर किसी वुजुर्ग कार्यकर्ता के पास गया। उसने वताया कि कोई व्यक्ति उसके द्वारा किये गये कार्यों के विरोध में अँगुलियाँ उठाते हैं। वुजुर्ग कार्यकर्ता ने उस कार्यकर्ता को अपनी ओर इंगित करके अँगुली दिखाने के लिए कहा। कार्यकर्ता ने अपने दायें हाथ की अँगुली की मुट्ठी वन्द करके वुजुर्ग कार्यकर्ता को एक अँगुली दिखाई। उन्होंने उसको समझाया कि तुम अपनी एक अँगुली मेरी ओर कर रहे हो पर बाकी तीन अँगुलियाँ स्वयं तुम्हारी ओर ही हैं। उन्होंने समझाते हुए कहा कि जो व्यक्ति सेवा-कार्य करेगा उसे ऐसी कठिनाइयों का सामना करना ही पड़ेगा।

चीन की एक प्रसिद्ध लोक-कथा है। वहाँ भविष्यवाणी हुई कि दस वर्ष तक बरसात नहीं होगी किसानों ने अपने हल घर में रख दिये। परन्तु एक किसान सूखे खेत में हल जोत रहा था। ऊपर जाते हुए वादलों को यह वात अजीव लगी। उन्होंने नीचे आकर किसान से पूछा—"क्या तुम्हें नहीं मालूम कि दस वर्षों तक वर्षा नहीं होगी? फिर तुम हल किसलिए चला रहे हो?" किसान बोला—"इन वर्षों में मैं अपना कर्म भूल न जाऊँ, इसलिए हल जोत रहा हूँ।" बादलों को यह वात लग गई। उन्होंने सोचा कि कहीं दस वर्षों में वे भी अपना कर्म न भूल जायें। ऐसा सोचते ही उन्होंने वरसना शुरू कर दिया। कार्य में लगे रहना ही सफलता की सीढ़ी है।

लक्ष्मीनारायण के पास पैसा था। वह एक धार्मिक स्थान पर कथा सुनने के लिए जाता था और सवके पीछे बैठता था। पूर्णाहुति

के दिन वह अपनी रूमाल में कुछ सिक्के ले गया और उसने उन्हें भगवान के सामने रखी थाली में डाल दिया। पुजारी ने सिक्के डालते हुए देखकर उससे आगे बैठने का अनुरोध किया। उसने कहा—"मैं तो प्रतिदिन पीछे बैठता हूँ। आज तक किसी ने भी मुझसे आगे बैठने के लिए नहीं कहा। क्या आज पैसा देखकर मेरी इज्जत की जा रही है ?" पुजारी ने कहा—"यह पैसे का नहीं, त्याग का सम्मान है।" सम्मान का पात्र वह व्यक्ति नहीं, जो धनवान है; बल्कि वह है, जो अपनी सम्पत्ति को उत्पादन या कल्याण-कार्यों में लगाता है। इसी प्रकार श्रेष्ठ बुद्धि और ऊँचे विचारों वाला विद्वान भी तब तक सम्मान का पात्र नहीं होता, जब तक वह अपनी बुद्धि, विचार और आचरणों से लोगों को सद्कर्मों की प्रेरणा नहीं देता। धन और बुद्धि का परहित के लिए उपयोग ही सभी दृष्टियों से उचित है और ऐसा करने वाला लोक में प्रतिष्ठा पाता है।

धार्मिक ग्रन्थों से हमें जानकारी मिलती है कि जो व्यक्ति तपस्या के लिए निकलता है, उसे रास्ते में धूप, पानी, काँटे, जंगली खूँखार जानवर, माया आदि का सामना करना पड़ता है। सेवा-पथ भी तपस्या-साधना का पथ ही है। तपस्वियों की तरह अडिग रहने पर ही राह के काँटे फूल बन जाते हैं।

गहरे सागर के मोती

★ मानसिक सेवा सरल नहीं है। कोई लौकिक विचार आया तो समझो कि मानसिक सेवा भंग हो गयी है।

★ भगवान परीक्षा लेते हैं—पहले वे जहर देते हैं बाद में अमृत।

★ समर्थ होकर भी जो सहन करें—सन्त वही है।

★ तुम्हारी कोई निन्दा करे तो शान्ति पूर्वक उसे सहन करो—

★ निन्दा करने वाले पर क्रिया मत करो, निन्दा को भी ईश्वर का एक शुभ संकेत समझो।

★ अपमान का दुःख मनुष्य को तब लगता है जब वह अभिमानावस्था में होता है।

★ संसार में पाप है ऐसी कल्पना मत करो। पाप हो तो उसका जवाब तुम्हें नहीं देना है। जो पाप तुम्हारे मन में है उसका जवाब तुम्हें देना होगा।

★ प्रभु कृपा हो तो सत्कार्य करने की इच्छा होती है।

★ सच्चा वैष्णव वही है जो अपने दोषों पर विचार करता है दूसरों के दोषों पर नहीं।

★ जितेन्द्रिय हूँ ऐसा अभिमान मत करो। मन में विषय सूक्ष्म रीति से बैठे हैं मौका मिलते ही वे प्रकट होने लगेंगे।

—स्कन्द पुराण

श्री पुष्कर लाल केडिया की अन्य प्रेरक-पठनीय कृतियाँ

- भगवान श्रीगणेश : : निर्विघ्न सफलता का धार्मिक एवं वैज्ञानिक आधार (सचित्र)
- भगवान शिव : : पारिवारिक सुखों का धार्मिक एवं वैज्ञानिक आधार (सचित्र)
- महादेवी लक्ष्मी : : समृद्धि एवं धन के सदुपयोग का धार्मिक एवं वैज्ञानिक आधार (सचित्र)
- देवों का मन्त्रिमण्डल : : लोकतंत्र का वैज्ञानिक संचालन (सचित्र)
- जीवन-धर्म-विज्ञान
- मेरी दृष्टि : : मेरा चिन्तन
- हमारा विराट् स्वरूप (सचित्र)
- The Values and Ideals of life in the mirror of Religion.

प्राप्ति-स्थान :

मनीषिका

गोपाल भवन

४३, कैलाश बोस स्ट्रीट, (फ्लैट नं० २१६)

कलकत्ता-७००००६

फोन : ३५-२९६७